© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

डॉ0 रामविलास शर्मा की भाषा दृष्टि

डॉ. राजेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
मर्यादा देवी कन्या पी0जी0 कालेज,
बिरगापुर, हनुमानगंज, इलाहाबाद।

सरांश – डॉ0 रामविलास शर्मा की भाषा दृष्टि पर विचार डालें तो यहां कहा जा सकता है कि भाषा की जिस जातीय दृष्टि की शुरूआत द्विवेदी, प्रेमधन तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया था डॉ0 रामविलास शर्मा ने उसको चर्मेत्कर्ष पर पहुंचा दिया। डॉ0 शर्मा के भाषा सम्बन्धी विचार कई रचनाओं मे इधर उधर फैले है। पर इनकी रचनाएं जिनसे भाषा के सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण का पता चलता है वो है–भाषा और समाज, भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी (भाग–1 व भाग–3) इसके अतिरिक्त भारतेन्दु, निराला, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आ0 शुक्ल पर लिखी गई उनकी आलोचनाएं उनके भाषा चिंतन को प्रस्तुत करती है।

मुख्य शब्द– डॉ0 रामविलास शर्मा, भाषा, समाज, जातीय, संस्कृति।

विरेन्द्र सिंह कहतें है– ''भाषा का उद्‌गम व विकास, जातीय भाषा और संस्कृति तथा ऐतिहासिक व भौतिकवादी द्वंदात्मकता के आधार पर भाषा का विवेचन, ये सभी तत्व भाषा के रूप को स्पष्ट करते है जो डॉ0 शर्मा के भाषा चिंतन के प्रेरक एवं मूल तत्व हैं।''[1] डॉ0 रामविलास शर्मा ने भाषा की उत्पत्ति के लिये समाज सापेक्ष, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक व प्राचीन नृतत्व तथा आदिम मानसिकता का सहारा लिया है। शर्मा जी भाषा की उत्पत्ति के लिये स्वयं भाषा को जिम्मेदार मानते हैं। डॉ0 रामविलास जी कहते है– ''प्राणि–जगत् में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो भाषा का व्यवहार करता है।''[2] मनुष्य द्वारा व्यवहारिक रूप से भाषा का प्रयोग करते का कारण डॉ0 शर्मा यह बताते है कि मनुष्य ने अनेक पदार्थों का कार्यों से कुछ ध्वनियों का हठात सम्बन्ध कायम किया है यही संबन्ध संकेत भाषा की मूल पूंजी है, ''विशेष कार्यों कार्य समूहों या वस्तुओं से कुछ निश्चित ध्वनियों के संसर्ग द्वारा भाषा का निर्माण होता है। यह क्रिया मूलतः वही है जिसमें स्नायुतंत्र वाह्य पदार्थों से स्थायी या अस्थायी संबन्ध बनाता है। वाह्य पदार्थों का यह इंद्रिय बोध प्रथम संकेत पद्वति द्वारा हुआ। दोनों पद्वतियों में मूलभूत एकता है, संबन्ध स्थापना की प्रणाली दोंनो में मूलतः एक है। ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योंकि भाषा की उत्पत्ति इन्द्रियों की स्वतः स्फूर्त प्रतिक्रिया से होंती है। जो इन्द्रियां किसी पदार्थ के रुप ज्ञान का माध्यम है वही उसके नामकरण का माध्यम भी है। जैसे रुप ज्ञान में पदार्थ से स्थायी और अस्थायी सम्बन्ध कायम किये जाते हैं वैसे ही नामकरण में भी कायम होते हैं।''[3]

भाषा का निर्माण पशु नहीं कर सका, मनुष्य ने कर लिया इसका कारण डॉ0 शर्मा मानव का परिवेश उसके जीवन की आवश्यकताएं और विशेष शारीरिक गठन स्वीकार करते हैं– ''पशु भाषा का निर्माण क्यों नहीं कर सके और मनुष्य क्यों कर सका इसका यह उत्तर नहीं है कि मनुष्य ने अपने सूक्ष्म चिंतन के कारण भाषा रचित अथवा भाषा उसमें अन्तर्निहित होती है। भाषा रचना का कारण उसका विशेष शारीरिक गठन है।''[4] ''सभी मनुष्य जो बोलते है, ध्वनि संकेतों से काम लेते हैं लेकिन ध्वनि संकेतों से काम लेने का ढंग उन सबका एक सा नहीं होता है। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएं एक सी रही है, उन्हें पूरा करने के साधनों में भी बहुत कुछ समानता रही है। किन्तु आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों को एक दूसरे से मिलाने में मनुष्य ने ध्वनि संकेतों का उपयोग अलग–अलग ढंग से किया''[5] और उन भाषा संकेतों के भिन्न होने के कारण भी डॉ0 शर्मा बताते हैं– ''भाषा मनुष्य की संस्कृति के विकास का साधन है और स्वयं उस संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। संस्कृति के अन्य अंगों की तरह उसमें भी यथेष्ट विचित्रता और विभिन्नता है।''[6]

डॉ0 शर्मा ने 'सूलियन हक्सले' और ए0सी0 हैडन की पुस्तक ''वी यूरोपियन्स'' लन्दन (1935) के कुछ तर्कों के आधार पर अपनी बात रखने का प्रयास किया है। जब वे कहते हैं– ''यह ऐसा देश है (इंग्लैण्ड) जिसके निवासी गौर से अधिक श्याम वर्ण के हैं।''(पृ0–28) ''अफ्रीका वासी नीग्रो भी किसी शुद्ध श्याम वर्ण नस्ल के नहीं है। उनमें 'कौकेशिक' और 'हैमिटिक समुदायों' का मिश्रण हुआ है।''(पृ0–100) तो डॉ0 शर्मा अपनी बात का तर्क पा जाते है जब यूरोप के लोग वहां के मूल नहीं है अफ्रीका की जातियां प्रजातियां वहां के मूल की नहीं है तो स्वाभाविक है एशिया से ही इन सबकी चहुदिशा की ओर गमन हुआ। डॉ0 शर्मा कहते हैं– ''विभिन्न युगों में यूरोप की ओर से एशिया से किस प्रकार अनेक जातियां गयी और वहां बस गयी इस बारे मे 'हक्सले और हैडन' भाषा विज्ञान की इस स्थापना को पुष्ट करते हैं कि जातियों के ये अभियान एशिया से यूरोप की ओर हुये थे।''[7]

इस प्रकार डॉ0 शर्मा पूरे विश्व की भाषा की मूल जननी एशिया और एशिया में भारत को मानते हैं इस तर्क को साबित करने के लिये उन्होनें ऋग्वैदिक काल से लेकर न जाने कितने गणों आदि का वर्णन करके अपनी बात साबित करने का प्रयास करते हैं। ''हर तरह के प्रमाण उत्तर भारत या भारत के उत्तर वाले प्रदेश को सांस्कृतिक वितरण केन्द्र के रुप में प्रस्तुत करते हैं। आश्चर्य की बात होगी यदि तांबा, पशु, अनाज आदि का उपयोग इधर से युरोप पहुँचा हो लेकिन भाषायें सब उधर से इधर आ गयी।''[8] ''भाषा वृक्ष के समान नहीं है जिसकी शाखायें एक तने से फूटती है जिसकी जड़ें एक निश्चित स्थान में खोदकर निकाली जा सकती है और उसके बीज का पता लगाकर उसके वंश का नामकरण किया जा सकता है। फिर भी भाषा असंदिग्ध रुप से अधिक चंचल और परिवर्तनशील होती है। वह वृक्ष से अधिक नदी के समान है जिसमें विभिन्न सहायक

नदी नाले भी अपना जल मिला देते हैं। जिसमें अरब समुद्र के बादलों का पानी कितना है कितना हिन्द महासागर के बादलों का यह पता लगाना प्रायः असंभव है।''[9]

भाषाओं की समानता के बारे में उनका कहना है– ''भाषाओं की समानता जन्मजात हो यह आवश्यक नहीं वह अनेक सामाजिक कारणों से भी उत्पन्न होती है। इस समानता के आधार पर किन्हीं भाषाओं को एक परिवार के अन्तर्गत मानना सही है, किन्तु उन्हें एक ही आदि स्रोत से उत्पन्न मानना अनिवार्यतः सही नहीं है। एक ही परिवार में भाषाओं की भिन्नता उनकी मौलिक स्वतंत्रता प्रमाणित करती है।''[10] बेलियां या किन्ही लघुजातियों की भाषाओं के रुप में उनका अस्तित्व भाषातत्वों में पहले भी रहता है किन्तु महाजातियों की भाषा के रुप में उनका अस्तित्व पहले नहीं होता। उदाहरण के लिये दिल्ली या आगरे की जो बोली हिन्दी उर्दू के रुप में विकसित हुई वह पहले एक छोटे से क्षेत्र में सीमित थी। जब वह अवध बुंदेलखण्ड, भोजपुरी, प्रदेशों की सम्मिलित भाषा बनी तब उसका क्षेत्र व्यापक हो गया वह हमारी जातीय भाषा बनी। इस प्रकार जातीय भाषा का विकास पूंजीवाद सम्बन्धों के कायम के बिना संभव नही होता।''[11]

18वीं सदी से जब उर्दू में हिन्दी शब्दों को हटाकर अरबी, फारसी के शब्द रखे जाने लगे तब हिन्दी को धक्का लगना शुरु हुआ। इस बात को एक षड्यंत्र या विभाजकारी क्रिया के रुप में भी स्वीकार की जा सकती है। इस बात को मुसलमान भी स्वीकार करते हैं। डॉ0 शर्मा कहते हैं– ''हिन्दुओं और मुसलमानों के मिलने से जो एक नयी भाषा के जन्म लेने का सिद्धान्त जोड़ा गया है वह एकदम लचर है। ''हिन्दुस्तान'' के मुसलमान उसी भाषा का प्रयोग करते थे जिसका हिन्दू।''..... हिन्दी के जिस रुप को हम उर्दू कहते हैं उसका विकास भी दिल्ली में 18वी सदी के पहले न हो पाया यानी फारसी के राजभाषा रहने से उर्दू साहित्य का विकास भी रुका। जिस समय दिल्ली में उर्दू का विकास हुआ उस समय तक हिन्दुओं मुसलमानों के साथ रहते लगभग छह सौ साल हो चुके थे। कहना न होगा कि आपसी व्यवहार के लिये इन शताब्दियों में मुसलमान उर्दू के जन्म लेने का इन्तजार न कर रहे थे। 18वी सदी के उर्दू रुप वाली खड़ी बोली और इससे पहलें की दकनी रुप वाली खड़ी बोली के शब्द भंडार में यह अंतर है कि हिन्दी के वे प्रचलित शब्द जो दकनी में मिलते हैं उर्दू से बहुत कुछ हटाये गये हैं और उनकी जगह फारसी के शब्द रखे गये हैं।''[12] डॉ0 शर्मा कहते हैं– ''अंग्रेजी राज्य हिन्दुस्तान में अपनी जड़ें जमा रहा था। इस देश पर राज्य करने के लिये उसने जनता में फूट डालने, एक सम्प्रदाय को दूसरे से लड़ाने और इसके लिये भाषा सम्बन्धी भेद से भी लाभ उठाने की नीति अपनायी। अंग्रेजों ने हिन्दी उर्दू के भेद से लाभ उठाया उसे बढ़ावा दिया अलगाव को खाईं को और गहरा किया।''[13] डॉ0 शर्मा शुक्ल जी की भांति भाषा को समाज व संस्कृति की संचित निधि मानकर उस पर गर्व करने की बात करते हैं– ''जिस तरह हम मानव समाज की अर्जित सम्पत्ति भाषा पर गर्व करते है उसी तरह संस्कृति के एक महत्वपूर्ण अंग लिपि पर भी गर्व करते हैं।''[14]

डॉ0 शर्मा कहते हैं– ''भारत में अंग्रेजी राज कायम होने से पहले यहां की अनेक भाषाओं और उसके साहित्य के विकास में मुसलमानों ने योग दिया है।''[15] ''लेकिन अठाहरवीं सदी की उर्दू में अरबी, फारसी शब्दों की जैसी बहुलता है वैसी न उस समय की न आज की किसी भारतीय भाषा में है।''[16] डॉ0 शर्मा किसी राष्ट्र की जातीय भाषा के अलावा उन जातियों की उपजातियों की उपभाषाओं को भी महत्व देते हैं। ''सेवियत संघ में सौ से ऊपर भाषाएं बोली जाती है लेकिन सोलह प्रजातंत्र ही हैं। भारत के हर जातीय प्रदेश में दूसरी जातियों के अल्पसंख्यक लोग रहते है। उन्हें अपनी भाषा मे शिक्षा पाने की सुविधायें मिलनी चाहिये किन्तु उन्हें अपने प्रदेश की राजभाषा भी सीखनी होगी। इन्हें अपनी भाषाओं के व्यवहार की सुविधा मिलनी चाहिये।''[17] ''भाषा संस्कृति के निर्माण में सहायक होती है भाषा द्वारा हम अपनी संस्कृति व्यक्त करते हैं भाषा स्वयं भी संस्कृति का अंग है।''[18] मनुष्य ने अपने सामाजिक विकास क्रम में प्रकृति को अपने अनुकूल बनाने, उससे जीवन यापन की सामग्री पाने, परिवेश पर हावी होने अथवा स्वयं को परिस्थितियों के अनुकूल ढालने के लिए अनेक भौतिक उपकरण जुटाएं, उसने अनेक अस्त्रों, आयुधों का अविष्कार किया है, जीवन रक्षा के लिए उसका व्यवहार किया है। इन सब उपकरणों को हम भौतिक संस्कृति मानते हैं। इस प्रकार भैतिक संस्कृति के बिना मनुष्य सामाजिक प्राणी नही बन सकता व उत्पादन और वितरण की नयी व्यवस्थाओं से गुजरता हुआ विकास की नयी मंजिलें पार नहीं कर सकता।''[19] संस्कृति में भले परिवर्तन हो जाये भाषा में परिवर्तन नही होता है, क्योंकि डा0 शर्मा का मानना है– ''भाषा को ऐसी प्रक्रिया मानना चाहिए जो न आधार हो, न संस्कृति हो, वरन् दोनों के बीच की वस्तु हो।''[20] पूंजीवाद के साथ समाज बदले, संस्कृतियां बदली, पर भाषा न बदली, इसके लिये उदाहरण देते हैं– ''रूस में पूंजीवादी व्यवस्था थी तब भी रूसी बोली जाती थी अब समाजवादी व्यवस्था है तब भी रूसी बोली जाती है। दोंनो युगों की भाषा मूलतः एक है यद्यपि संस्कृति में आमूल परिवर्तन हो गया है।''[21]

वो स्पष्टः कहतें है कि अर्थतन्त्र बदलने पर संस्कृति के सभी स्तरो पर एक साथ परिवर्तन नही होता कही उसकी गति धीमी होती है कहीं अधिक तीव्र होती है– ''यह धारणा भ्रान्त सिद्व होती है कि समस्त संस्कृति, अर्थतन्त्र के आधार पर बनी हुई इमारत है। जो आधार बदलने पर मूलतः बदल जाती है उसके कुछ तत्व तेजी से बदलते हैं। कुछ तत्व बहुत धीरे या कम बदलते है जैसे मनुष्य का सौन्दर्य बोध। इसलिए व्यवस्था बदलने पर भाषा में आमूल परिवर्तन न हो तो कोई आश्चर्य नही संस्कृति के बहुत से तत्वों में भी परिवर्तन नही होता।''[22]

डॉ0 शर्मा की भाषा मे विभिन्न जातीय भाषाओं का समिश्रण है विभिन्न बोलियों व उपबोलियों के शब्दों के मेल उनके शब्दों मे मिलता है। प्रो0 राजेन्द्र प्रसाद कहते हैं– ''रामविलास जी की भाषा में जातीयता अनुभूति के कारण ही व्यक्तियों मुहल्लों , पेड–पौधों, नदियों आदि का संश्लिष्ट यथार्थपूर्ण सूक्ष्म और प्रभावी

संमूर्तन हो सका है।''[23] अंत में राजेन्द्र जी कहते हैं– ''रामविलास जी की भाषा की शक्तिमत्ता का एक कारण यह भी है कि वे स्वयं ब्रजभाषा खड़ी बोली, बंगला, उर्दू, अरबी–फारसी, अंग्रेजी और संस्कृत भाषाओं और इनके साहित्य ज्ञाता है।''[24]

डॉ0 शर्मा में भाषा को विशेष ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता है वो भाषा को इस ढंग से रखते है कि उनमें एक आकर्षण होता है। जीवन के विविध रंग समाहित होते हैं– ''जीवन को बहुत पास से छूते हैं रामविलास, उनकी भाषा जीवन की अनेक रंगो को पकडकर झिंझोड़ती उन रंगो में अपना रंग मिलाती उनमें अन्तः प्रविष्टि हेाती जाती है। एक साथ वह कई प्रकार के तेवर बदलती है और पाठक को बांधे रहती है।''[25]

सन्दर्भ –

1. रामविलास शर्मा (लेखः विरेन्द्र सिंह), सं0– विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ0 77
2. भाषा और समाज, (रामविलास शर्मा), पृ0 61
3. वही, पृ0 69
4. वही, पृ0 71
5. वही, पृ0 76
6. वही, पृ0 76
7. वही, पृ0 149
8. वही, पृ0 149
9. वही, पृ0 153–154
10. वही, पृ0 167
11. वही, पृ0 258
12. वही, पृ0 293
13. वही, पृ0 300
14. वही, पृ0 301
15. वही, पृ0 311
16. वही, पृ0 373

17. वही, पृ0 406

18. वही, पृ0 406

19. वही, पृ0 406

20. वही, पृ0 406

21. वही, पृ0 406

22. वही, पृ0 407

23. रामविलास शर्मा, (लेखः डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद) सं0– विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पृ0 129

24. वही, पृ0 131

25. वही, पृ0 131